सोमवार,
१६ मार्च, १९५३

संसदीय वाद विवाद

1st

लोक सभा

तीसरा सत्र

शासकीय वृत्तान्त

(हिन्दी संस्करण)

भाग २—प्रश्न और उत्तर से पृथक् कार्यवाही

लोक सभा

सोमवार, १६ मार्च १९५३

सदन की बैठक दो बजे समवेत हुई

[**उपाध्यक्ष महोदय** अध्यक्ष पद पर आसीन थे।]

प्रश्न और उत्तर

(देखिये भाग १)

२.५३.म०प०

एक सदस्य की गिरफ्तारी

उपाध्यक्ष महोदय : मुझे सदन को यह बताना है कि मुझे लखनऊ के नगर दंडाधीश से निम्न तार प्राप्त हुआ है :

"महोदय,

मुझे आपको यह बताने का सम्मान प्राप्त है कि मैंने, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १४४ के अधीन अपनी शक्तियों के प्रयोग में, श्री वी० जी० देशपांडे, संसत्सदस्य को एक आदेश देना अपना कर्तव्य समझा जिससे उन्हें जम्मू के प्रजा परिषद् आन्दोलन पर और जम्मू काश्मीर प्रश्न पर लखनऊ में सार्वजनिक भाषण देने से रोका गया। क्योंकि श्री देशपांडे ने इन आदेशों का उल्लंघन किया, अतः वे आज लगभग ७.३० बजे सायं भारतीय दण्ड संहिता की धारा १८८ के अन्तर्गत बन्दी बना लिये गये और तत्काल एक दण्डाधीश के समक्ष उपस्थित किये गये और जामिन

पर छोड़ दिये गये। उनके मुकदमे की तारीख कल के लिए रखी गयी है।

भवदीय

वी० एम० भिड़े,

नगर दंडाधीश,

लखनऊ

दिनांक १५ मार्च १९५३."

डा० एस० पी० मुकर्जी (कलकत्ता दक्षिण-पूर्व) : क्या वह कोई व्यापक आदेश था ?

उपाध्यक्ष महोदय : मुझे इससे अधिक कुछ पता नहीं है।

आंध्र राज्य के निर्माण विषयक वक्तव्य

गृह-कार्य तथा राज्य मंत्री (डा० काटजू) : श्रीमान्, जैसा कि सदन को ज्ञात है, आंध्र राज्य के निर्माण के प्रश्न पर सरकार सक्रिय विचार करती रही है। श्री न्यायमूर्ति वांचू ने, जिन्हें राज्य के निर्माण सम्बन्धी वित्तीय तथा अन्य परिणामों पर विचार करने के लिए नियुक्त किया था अपना प्रतिवेदन ७ फरवरी १९५३ को पेश कर दिया जिस पर सरकार विचार कर रही है। आशा की जाती है कि कुछ महत्वपूर्ण विवादग्रस्त प्रश्नों पर सदन में शीघ्र ही एक वक्तव्य दिया जायेगा।

नये राज्य के निर्माण से कई समस्यायें उत्पन्न होती हैं--कुछ उच्च नीति की और अन्य प्रशासन-सम्बन्धी और वित्तीय--जिन पर ध्यानपूर्वक विचार तथा परामर्श करना

[डा० काटजू]

अपेक्षित है । इस समय इनके विषय में विस्तृत निश्चय करना तो संभव नहीं है परन्तु आशा है कि कुछ महत्वपूर्ण निश्चय शीघ्र ही किये जायेंगे और सदन के समक्ष रखे जायेंगे ।

प्रधान मंत्री ने १९ दिसम्बर १९५२ में इस सदन में जो वक्तव्य दिया था उसके अनुरूप आंध्र-राज्य के निर्माण के लिए सरकार वचन-बद्ध है ।

आशा है कि न्यायमूर्ति वांचू के प्रतिवेदन को, सरकार की सिपारिशों के साथ, इसी मास सदन पटल पर रख दिया जायगा । सदन का अनुमोदन प्राप्त होने पर विधान-निर्माण करना होगा ।

सामान्य आयव्ययक—अनुदानों की मांगें

उपाध्यक्ष महोदय : अब सदन वैदेशिक कार्य मंत्रालय सम्बन्धी अनुदानों सं० २२, २३, २४ तथा २५ की मांगों पर चर्चा आरम्भ करेगा । सब सदस्यों के लिए १५ मिनट का समय-सीमा होगी और यदि आवश्यक हो तो दलों के नेताओं के लिए २० मिनट मिल सकते हैं ।

सदस्य जिन कटौती प्रस्तावों को प्रस्तावित करना चाहें उन्हें १५ मिनट में सचिव को दे दें । मैं उन्हें प्रस्तावित हुए समझ लूंगा ।

अब सदन के समक्ष निम्न मांगों के प्रस्ताव हैं :

मांग संख्या २२—आदिमजातीय क्षेत्र—३,४६,९९,००० रुपये

मांग संख्या २३—वैदेशिक कार्य—५,१६,२६,००० रुपये

मांग संख्या २४—चन्द्रनगर—२१,३३,००० रुपये

मांग संख्या २५—वैदेशिक कार्य मंत्रालय के अधीन विविध व्यय—३,४६,००० रुपये ।

श्री एच० एन० मुकर्जी (कलकत्ता उत्तर पूर्व) : मैं सरकार को कुछ कागज-पहले ही भेज चुका हूं जो हमें वेंगकाक से प्राप्त हुए थे, जिनसे यह पता लगता था कि गत युद्ध के अंत के समय, श्री सुभाष चन्द्र बोस और जापान सरकार के बीच भारी मतभेद हो गये थे और दक्षिण एशिया और पूर्वी एशिया के भारतीय श्री बोस की मृत्यु सम्बन्धी समाचारों पर विश्वास नहीं करते, और कुछ लोगों ने, जो भारतीय राष्ट्रजन हैं, कुछ धन राशि का गबन किया जो भारतीय स्वाधीनता संघ की थी और सुभाष बोस के पास थी । जापान सरकार श्री सुभाष चन्द्र बोस के कथित अवशेषों को हमें देना चाहती है अतः इस मामले में जांच करना आवश्यक है ।

प्रधान मंत्री ने उस दिन स्टालिन की मृत्यु पर बहुत भावनापूर्व वक्तृता दी थी । वे अब कहते हैं कि भारत निर्बल देश है और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर अधिक असर नहीं डाल सकता । विगत में जब वे लोगों को मुसोलिनी, हिटलर, फ्रेंको आदि के विरुद्ध जागृत करते थे तब तो वे नहीं कहते थे कि हम निर्बल हैं । स्टालिन ने हमारे राजदूत को और हमारे शांतिदूत डा० किचलू को कहा था कि जो विश्व के लोगों और उनके भविष्य की चिन्ता करते हैं उनका कर्तव्य है कि वे देखें कि शांति की विजय हो, और साम्राज्यवाद विध्वंस उत्पन्न न कर सके । क्या हम उस शांति वातावरण को उत्पन्न करने का कर्तव्य निभा रहे हैं ? सोचिये हो सकता है कि आप कदाचित ऐसी नीतियों पर चल रहे हों जो आपके आदर्शों के अनुरूप न हों ।

हमें बताया जाता है कि विश्व में भारत की प्रतिष्ठा बहुत है और हम स्वतन्त्र वैदेशिक नीति का अवलंबन कर रहे हैं; जो किसी गुट के साथ न मिलने की नीति है ।

४ दिसम्बर १९४७ को प्रधान मंत्री ने संविधान सभा में बताया था कि अंततोगत्वा वैदेशिक नीति तो आर्थिक नीति का परिणाम होती है, और जब तक भारत अपनी किसी आर्थिक नीति का विकास न कर ले तब तक हमारी वैदेशिक नीति अस्पष्ट रहेगी। उस समय के पश्चात् भारत की आर्थिक नीति का विकास हो चुका है जो प्रधानतः संयुक्त राज्य और ब्रिटेन की आवश्यकताओं के अनरूप ही है। ७ जुलाई १९५० को प्रधान मंत्री ने स्वीकार किया था कि हमारी अर्थव्यवस्था स्पष्टतः इंगलिस्तान तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्रों के साथ आबद्ध है। बाद में उन्होंने कहा "राजनैतिक नीति की बात अलग है।" राजनैतिक नीति के आर्थिक नीति पर आश्रित होने के अपने पहले सिद्धांत को उन्होंने बदल दिया और उसके कारण भी नहीं बताये।

मैं विशेषतः भारत-अमरीकी शिल्पिक सहयोग करार के प्रति निर्देश करना चाहता हूं। पता नहीं प्रधान मंत्री ने उस दस्तावेज़ पर कैसे हस्ताक्षर कर दिये, जिसे सुविख्यात गांधी-वादी अर्थ-शास्त्री श्री सुरेश रामभाई ने दासता का बन्धन बताया है, क्योंकि उससे हम अपनी स्वतन्त्रता को बेच रहे हैं। उससे अमरीकी निदेशक को हमारे व्यय पर नियंत्रण करने का अधिकार दे दिया गया।

प्रधान मंत्री ने विगत फरवरी में कहा था कि विश्वशांति के लिए यह आवश्यक है कि संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ, जिनकी विचार धारा तथा प्रणालियां सर्वथा भिन्न हैं, एक साथ कार्य करें। पर उन्हें ऐसा करने से रोकता कौन है? लेनिन ने १९२२ में समाजवादी तथा पूंजीवादी व्यवस्थाओं के सह-अस्तित्व की बात कही थी और स्टालिन बार-बार उसे दोहराता रहा है। परन्तु सोवियत संघ, जनतांत्रिक चीन और पूर्वी यूरोपीय लोकतंत्रों के साथ व्यापार पर कौन रोक लगाता है? अमरीका या सोवियत संघ? और हमने क्या किया है? चेकोस्लोवाकिया व्यापार मिशन और सोवियत राजदूत ने इस देश को पूंजीगत तथा अन्य सामान देने की पेशकश की, परन्तु हमारी सरकार ने केवल यही कहा कि हमारे व्यापारियों को सोवियत व्यापारियों से सम्बन्ध स्थापित करने की स्वतन्त्रता है। हम यह भूल गये कि उनकी अर्थव्यवस्था आयोजित है अतः जो बात हो वह सरकारी स्तर पर ही हो सकती है।

हम उन देशों से व्यापार कर ही नहीं सकते। लंका ने चावल के बदले में उन्हें रबड़ बेचा था तो चतुर्थ लक्ष्य व्यवस्था में उसे सहायता नहीं दी जा रही। हमारे यहां भी चतुर्थ लक्ष्य है, विदेशी विशेषज्ञ हैं, पारस्परिक सुरक्षा है, अतः हमारा आर्थिक विकास असंभव हो गया है।

प्रधान मंत्री ने चीन को अभिज्ञात करने पर बल दिया है। उसमें कौन रोड़ा अटका रहा है? अमरीका या सोवियत संघ? प्रधान मंत्री ने कहा है कि सामूहिक विध्वंस के भयानक शस्त्रास्त्र तैयार हो रहे हैं। पर उन शस्त्रास्त्रों के परित्याग के लिए कौन अनवरत प्रयत्नशील है? अमरीका में कीटाणु अस्त्रों के लिए आयव्ययक में धन दिया जाता है। सोवियत संघ इन अस्त्रों के परित्याग के लिए बार बार प्रस्ताव रखता है। यदि हम सचमुच स्वतन्त्र होते तो हम भी ऐसे ही प्रस्ताव रखते।

प्रधान मंत्री कहते हैं कि हम उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष में औपनिवेशिक देशों का समर्थन करते हैं। उपनिवेशवाद का समर्थन आज कौन कर रहा है—सोवियत संघ आदि या ब्रिटेन अमरीका आदि? और हम इन साम्राज्यवादियों की सहायता क्यों करते हैं? अभी तक भारतीय राजक्षेत्र में गुरखों की भरती का कलंक नहीं मिटा है। हमारे देश में से गुरखा रंगरूतों को मार्ग देने का

[श्री एच० एन० मुकर्जी]

करार अभी चालू है। मलाया और हांग-कांग में गुरखा टुकड़ियों में भारतीय सेना-जनों की नियुक्ति के विषय में मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया गया है।

न्यूयार्क टाइम्स के १८ फरवरी १९५३ के अंक में छपा है कि भारतीय सेना नेपाल के लिए एक नई सड़क का निर्माण कर रही है। भारत की एक सैनिक टुकड़ी नेपाल के सशस्त्र बलों को आधुनिक बना रही है और विभिन्न प्रशासन-क्षेत्रों में भी अन्य भारतीय परामर्श-दाता हैं। नेपाल के नेता श्री बी० पी० कोयराला ने कहा है कि नेपाल अपनी स्वतंत्रता के और भारत द्वारा नेपाल में की नीति में हस्तक्षेप के प्रश्न पर बहुत भावुक है। आज पत्रों में यह भी समाचार छपा है कि भारतीय सैनिक शिष्टमंडल को लौटने के लिए कहा जा रहा है। हम नेपाल को यह क्यों नहीं समझाते कि वह अपने लोगों को ग्रेट-ब्रिटेन की सेना में भाड़े के टट्टुओं के समान भरती होकर मलाया के लोगों पर अत्याचार करने से रोके।

आइजन होवर, डलेस आदि अमरीकी शासकों ने तो स्पष्ट ही कह दिया है कि वे एशिया वालों को एशिया वालों से लड़वाना चाहते हैं। वे चांक काई शेक को ही सहायता नहीं देंगे, बल्कि वीतनाम, ट्यूनीसिया, केनिया आदि के स्वाधीनता प्रेमी लोगों का दमन करने के लिए ब्रिटिश, फ्रेंच आदि साम्राज्यवादियों को भी अधिकाधिक सहायता देंगे। समाचार है कि मई में डलेस भारत आयेगा, वह भारत में स्वागत योग्य अतिथि नहीं है।

दक्षिण अफ्रीका में जातिवाद है। संयुक्त राष्ट्र में हमारा उस जातिवाद के विरुद्ध किसने समर्थन किया—अमरीका ने, ब्रिटेन ने, फ्रांस ने या सोवियत संघ ने? कोरिया में जो अत्याचार हो रहा है उसपर प्रधान मंत्री ने भावनापूर्ण वक्तृता दी है परन्तु वहां भी हमारे कारनामे अच्छे नहीं हैं। हम प्रायः कोरिया के विषय में अमरीका का साथ देते रहे हैं। न्यूयार्क में हमारी भूतपूर्व राजदूत श्रीमती पंडित ने "लौह-आवरण", "सोवियत पिछलग्गू देश" आदि शब्दों का प्रयोग किया है। चीन कहता है "युद्ध बन्द कर दीजिये, युद्ध बन्दियों का विवाद फिर निबटा लेंगे।" हम इस विषय में कुछ भी क्यों नहीं करते?

हम कहते हैं कि हम किसी गुट में शामिल नहीं हैं परन्तु यह तो इस बात पर परदा डालने के लिए कहा जाता है कि हम कोई स्वतन्त्र वैदेशिक नीति अपना ही नहीं सकते। हम रेलवे पुस्तक भंडारों पर सोवियत साहित्य पर रोक लगाते हैं परन्तु सोवियत-विरोधी साहित्य बिकने देते हैं। अमरीकी प्रचार फिल्मों को भारत में आने दिया जाता है, सोवियत फिल्मों को नहीं। सबसे बड़ी बात यह है कि हम ब्रिटिश राष्ट्र मंडल में हैं। उनके विशेषज्ञ और पूंजी यहां आते हैं। ब्रिटेन द्वारा भारत का शोषण जारी है। प्रधान मंत्री अब रानी के राजतिलक समारोह में और प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में भाग लेने जायेंगे।

सेठ गोविन्द दास (मंडला-जबलपुर—दक्षिण): उपाध्यक्ष महोदय, मालूम नहीं यह अनेक बार किस प्रकार होता है कि जब जब साम्यवादी दल के नेता या उपनेता महोदय कुछ कहने को खड़े होते हैं उसके बाद ही आप मुझे पुकारते हैं। जो कुछ हो, इस वर्ष जिस समय राष्ट्रपति जी के भाषण पर बहस आरम्भ हुई थी उस वक्त भी ऐसा ही हुआ और आज भी ऐसा ही हुआ।

अभी मैंने श्री मुखर्जी का जो भाषण सुना उसमें आरम्भ से अन्त तक मुझे एक ही बात

सुनाई देती रही, वह यह कि हम जिस वैदेशिक नीति का अनुसरण कर रहे हैं वह नीति यथार्थ में अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन का समर्थन करने वाली नीति है। मैं उन से कहना चाहता हूं कि यदि उनका कहा माना जाय और जिस नीति पर चलने के लिए वे हमें कह रहे हैं अगर हम उस पर चलें तो वह नीति सोवियट यूनियन का समर्थन करने वाली नीति होगी।

हमने इस बात को न जाने कितनी बार स्पष्ट किया है कि हमारी वैदेशिक नीति किसी भी गुट का समर्थन करने वाली नीति नहीं है और यदि श्री हीरेन मुखर्जी थोड़ा सा भी पक्षपात रहित होकर इस सम्बन्ध में विचार करेंगे तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि उनका सोचना कितना गलत है। उन्होंने कहा कि हमारी नीति का समर्थन अमरीका करता है, अमरीका के साथी संगी करते हैं। पर इस बात को भूल जाते हैं कि भारत में जो साम्यवादी दल है यदि हम उस दल को छोड़ दें तो हमारी वैदेशिक नीति का समर्थन चीन भी करता है और अनेक बार रूस भी। यह हमारी दुर्भाग्य की बात है कि जब अन्य साम्यवादी देश भी हमारी नीति का समर्थन करते हैं तब हमारे देश में ही जो साम्यवादी दल निर्मित हुआ है उस के पास हमारी नीति के या हमारे किसी कार्य के सम्बन्ध में एक भी शुभ विचार नहीं है, एक भी शुभ शब्द नहीं है। श्री हीरेन मुखर्जी ने कहा कि हमारे प्रधान मंत्री जी ने कहा है कि किसी भी वैदेशिक नीति के लिए आर्थिक नीति का स्पष्टीकरण होना चाहिए। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि हमारी आर्थिक नीति बहुत स्पष्ट है और अगर वे हमारी पंचवर्षीय योजना को थोड़ा ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो उन्हें ज्ञात होगा कि हमारी आर्थिक नीति बहुत दूर तक उस पंचवर्षीय योजना में स्पष्ट की गयी है। उन्होंने कहा कि हमारी आर्थिक नीति अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन से प्रभावित है, इसका प्रमाण यह है कि हम वहां से आर्थिक सहायतायें मंजूर करते हैं। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि हमने किसी देश से किसी भी आर्थिक सहायता को किसी भी शर्त पर स्वीकार नहीं किया है। जब हमें अनाज अमरीका से मुफ्त में मिलता था तब, मैं उन्हें स्मरण दिलाना चाहता हूं कि, वह तक हमने स्वीकार नहीं किया। यदि कोई भी देश कोई शर्त हमारे सामने अपनी सहायता देने के पूर्व रखना चाहता है तो वह शर्त हम कदापि स्वीकार नहीं करते।

फिर उन्होंने एक बड़ी विचित्र बात कही। उन्होंने कहा कि सुरक्षा परिषद् में हमने कितनी बार अमरीका के साथ वोट किया, कितने बार हम तटस्थ रहे और कितनी बार हमारा मत रूस और चीन के साथ गया। यह तो बड़ी विचित्र दलील है। कितने बार हमने किसके साथ वोट किया यह प्रश्न ही नहीं उठता। हमने जब भी जो बातें सही समझीं उनके पक्ष में वोट किया चाहे वे बातें अमरीका की हों, चाहे वे बातें रूस की हों चाहे वे बातें किसी भी देश की हों।

फिर उन्होंने एक और अद्भुत बात कही कि यहां पर अमरीका का बहुत अधिक साहित्य मिलता है। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि अमरीका और यूरोप का जितना यहां साहित्य मिलता है इससे कदाचित रूस का अधिक मिलता है और रूस का उससे बहुत अधिक सस्ता भी मिलता है जिस वजह से वह अधिक खरीदा जाता है। यदि हमारी नीति रूस के साहित्य को रोकने की होती तो उनकी पार्टी का जो पुस्तकालय है वह भी बन्द हो गया होता। इसलिए यह कहना कि हम किसी देश के विशेष साहित्य को प्रोत्साहन देते हैं बिलकुल गलत है। मेरा कहने का मतलब यह है कि श्री हीरेन मुखर्जी का सारा भाषण एक ही बात से भरा हुआ था कि हमारी

[सेठ गोविन्द दास]

वैदेशिकनीति ऐसी नीति है कि जिस नीति से अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन का समर्थन होता है। यह बात सही नहीं है। हमारी नीति एक ऐसी नीति है जिस नीति का समर्थन आज एक ओर यदि अमरीका करता है तो दूसरी ओर रूस और चीन भी करते हैं। यह अलग बात है कि हमारी यह नीति यदि किसी के विरुद्ध जाती है तो वह हम पर दुलत्ती झाड़ देता है। जैसे जब हमने कहा कि कोरिया में राष्ट्र संघ की सेवाओं द्वारा ३८वीं अक्षांश को पार न किया जाय या चीन को सुरक्षा परिषद् में लिया जाय तब अमरीका ने हमारा विरोध किया था और अभी जब हमने कोरिया युद्ध बन्द करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा तब रूस और चीन ने हमारा विरोध किया किसी भी ऐसी नीति का जिस नीति का हम अनुसरण कर रहे हैं हमेंशा इस प्रकार का विरोध होता रहेगा ।

उपाध्यक्ष महोदय, मैं सदा से इस नीति का समर्थक रहा हूं और जब कि मैंने दुनिया के प्रायः सभी देश देख लिए तब मैं इसका और बड़ा समर्थक हो गया हूं। मैं आज यह मानने लगा हूं कि हमारी वैदेशिक नीति से हमारा कल्याण है इतना ही नहीं, पर सारे संसार का कल्याण है। और जब मैं यह कहता हूं तब मैं यह चाहता हूं, कि सारे संसार की क्या स्थिति है इसको थोड़ा समझने का प्रयत्न किया जाय इसके लिए संसार के मुख्य मुख्य देशों की अवस्था क्या है इस पर ध्यान देना जरूरी है।

पहले आप यूरोपीय देशों की ओर देखिए। यूरोपीय देशों में ग्रेट ब्रिटेन एक अलग स्थान रखता है। वह अलग स्थान इसलिए रखता है कि उसके कुछ उपनिवेश हैं। फिर यूरोप के वे देश हैं जिन में प्रजातंत्र चल रहा है, जैसे इटली, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी। आज ये देश बड़े जर्जर हो गये हैं और आप को यह बात मालूम होगी कि जिस प्रकार युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका (संयुक्त राज्य अमरीका) है, उसी प्रकार आजकल युनाइटेड स्टेट्स आफ यूरोप (संयुक्त राज्य यूरोप) के बनाने की चर्चा भी चल रही है। इसके बाद यूरोप के ही कुछ साम्यवादी देश आते हैं। फिर एशिया के देश हैं। उन देशों में चीन, जापान और भारत का मुख्य स्थान है। चीन रूस के साथ है। जापान इस समय किस के साथ है यह कहना बड़ा कठिन है। जब मैं अभी जापान गया तब मुझे यह भास हुआ था कि इस समय की जापानी सरकार बहुत समय तक नहीं रह सकेगी। जापान में मैंने यह भी महसूस किया था कि भारत ने जो सैन फ्रांसिस्को में सुलहनामा हुआ उसका विरोध किया था, उसका जापान निवासी यथार्थ में समर्थन करते हैं। जहां तक भारत का सम्बन्ध है, इस विषय में मैं बाद में कहूंगा। फिर अफ्रीका के कुछ देश आते हैं। अफ्रीका के इन देशों में यदि हम देखें तो सबसे बड़ा प्रश्न इस समय दक्षिण अफ्रीका का है। वहां पर रंग भेद जिस परिणाम में बरता जा रहा है, संसार में कहीं भी नहीं है। इस के पश्चात् उपनिवेशों के तीन देश कनाड़ा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड आते हैं। वहां पर बहुत भूमि है बहुत से नैसर्गिक साधन हैं, परन्तु आबादी बहुत कम है। इन तीन उपनिवेशों की अवस्था संसार से एक बिल्कुल अलग अवस्था है। उसके बाद आते हैं अमेरिका और रूस।

अब यदि आप अमेरिका और रूस के सिवाय इन सारे मुख्य मुख्य देशों को देखें, उनकी परिस्थिति को देखें उनकी इस समय की जो आर्थिक अड़चनें हैं उनको देखें, तो आपको मालूम होगा कि यथार्थ में ये सारे देश अपनी नाजुक परिस्थिति के कारण, जो दो गुट बन गये हैं, एक अमेरिका का और दूसरा रूस

का, इन में से किसी गुट में सम्मिलित हैं। वे इसलिए सम्मिलित हैं कि कुछ देश यदि अमेरिका के साथ न हों तो आज उनकी जो अवस्था है वह और भी खराब हो जायेगी। इसी तरह कुछ देश अगर रूस के साथ न हों तो उनकी जो आज दशा है वह इससे भी खराब हो जायेगी। और सारे देशों की वैदेशिक नीति इनके स्वार्थ के अनुसार चलती है। मैं यह दावा करता हूं कि भारतवर्ष की वैदेशिक नीति किसी स्वार्थ के साथ नहीं चलती। वह चलती है हमारे परम्परा के अनुसार। वह चलती है महात्मा गांधी ने जो हमें मार्ग बतलाया है उस मार्ग के अनुसार।

लड़ाई इस समय जो नहीं हो रही है इसका कारण कोई यह न समझे कि वह अमेरिका या रूस की किसी सद्भावना या किसी मैत्री या किसी प्रेम के कारण नहीं हो रही है। ऐसी बात नहीं है। अमेरिका अगर नहीं लड़ता है और रूस यदि नहीं लड़ता है, यानी इनके गुट वाले जो दूसरे देश हैं, वे एक दूसरे से नहीं लड़ते हैं तो वह इसलिए कि दोनों गुट एक दूसरे से भयभीत हैं। इनमें से एक गुट को भी यह विश्वास नहीं है कि यदि लड़ाई हुई तो कौन जीतेगा। जो बड़े बड़े भाषण होते हैं जैसे अभी मालेनकोव का हुआ कि वे शान्ति चाहते हैं, या आइजनहावर का होता है कि वे शान्ति चाहते हैं, या चर्चिल साहब का होता है कि वे शान्ति के उपासक हैं और इस प्रकार शान्ति की जो बड़ी बड़ी बातें कही जाती हैं उनमें बहुत कम तथ्य हैं। इनमें यदि सचाई होती तो यह जो नित नयी लड़ाई की तैयारियां हो रही हैं, वह क्यों होतीं। अभी श्री हीरेन मुखर्जी ने बताया कि अमरिका में नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र बन रहे हैं। अभी मैं चीन गया था और चीन जाने से यह बात मालूम हो जाती है कि रूस में भी किस प्रकार के हथियार बन रहे हैं। अमेरिका की बातें जल्दी प्रकट हो जाती हैं, क्योंकि वहां प्रजातन्त्र पद्धति चल रही है। रूस और चीन की बातें इसलिए प्रकट नहीं होने पातीं कि वहां डिक्टेटरशिप है। डिक्टेटरशिप में इस प्रकार की चीज़ें प्रकट होना कठिन बात होती है। इसके अतिरिक्त अगर कोई यह समझते हैं कि मार्शल स्टालिन के स्वर्गवास के कारण या अमेरिका में डिमाक्रैट्स नहीं जीते और रिपब्लिकन जीते हैं और आइजनहावर प्रैसीडेंड हो गये हैं, इससे सारे वायुमंडल में कोई परिवर्तन होने वाला है, तो यह भी असम्भव बात है। अमेरिका के साथ जो देश हैं वे सदा यह सोचा करते हैं कि रूस और चीन में कभी न कभी झगड़ा होने वाला है। रूस के साथ जो हैं वे सोचा करते हैं कि अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन में झगड़ा होने वाला है। मैं ने जो कुछ देखा उसके आधार पर मैं यह कहना चाहता हूं कि यह बिल्कुल गलत है। न कभी रूस और चीन में झगड़ा होगा और न कभी अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन में। तो जो आज लड़ाई का वायुमंडल है, वह वायुमंडल यदि भारत वर्ष में नहीं है, और भारतवर्ष ही एक मात्र ऐसा देश है कि जिसमें हमें लड़ाई का वायुमंडल दिखाई नहीं देता तो वह हमारी वैदेशिक नीति के कारण है।

जो यह कहते हैं कि हमारी नीति असफल हो गई है, यह बात भी गलत है। इस नीति का कितना प्रभाव इस समय सारे संसार पर है, वह इसी से प्रकट है कि इस नीति के कारण ही आज दुनिया में भारतवर्ष की प्रतिष्ठा है। हम कोरिया के युद्ध को नहीं रोक सके, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु कोरिया के युद्ध को रोकने के लिए हमने जो दो प्रयत्न किये, एक प्रयत्न यह कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सेनाएं ३८ वें अक्षांश पर्ण को पार न करें और दूसरा प्रयत्न अभी जो प्रस्ताव रखा, कोरिया के युद्ध का अन्त करने के लिए, वे ऐतिहासिक प्रयत्न थे। और संसार के वर्तमान इतिहास का जब कभी निष्पक्षता

[सेठ गोविन्द दास]

से लेखन होगा तो इन प्रयत्नों को बहुत बड़ा स्थान मिलने वाला है । फिर हमारे खुद के लाभ की दृष्टि से भी जो लोग कहते हैं कि हम गलत रास्ते पर चल रहे हैं, वे भी ऐसा सोच कर भूल कर रहे हैं। जहां तक हमारे देश का सम्बन्ध है अगर हम अपनी पंच-वर्षीय योजना को देखें और यह देखें कि उसमें हम कितना धन लगा रहे हैं, तो ज्ञात हो जायगा कि यदि हम किसी गुट में शामिल हो भी जायें तो हमें कोई बहुत बड़ा फायदा होने वाला नहीं है । अगर हम किसी गुट में शामिल होकर क्षणिक आर्थिक लाभ प्राप्त भी कर लें तो उस आर्थिक लाभ के साथ में जो जंजीरें हम पर बंधेंगी, उनका आगे चलकर क्या नतीजा निकलेगा, यह भी नहीं कहा जा सकता । इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से और हमारी राष्ट्रीय दृष्टि से दोनों दृष्टियों से हमारी यह वैदेशिक नीति सफल नीति रही है । और यदि कभी भी संसार में सच्ची शांति स्थापित हो सकी, तो वह इसी नीति के कारण हो सकेगी ।

इस वैदेशिक नीति का हमारे दूतावासों से भी बहुत सम्बन्ध है । मैं बहुत थोड़े शब्दों में दूतावासों के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं । मैंने अधिकांश देशों के इन दूतावासों को देखा है और मुझे इस बात पर हर्ष है कि हमारे अधिकांश दूतावास बहुत अच्छी तरह चल रहे हैं । लोग कहते हैं कि इन पर बहुत अधिक खर्च होता है यह भूल है । कोई भी जाकर इन दूतावासों को देखे और देखे कि हम उन पर कितना खर्च करते हैं तो उसे ज्ञात हो जायगा कि दूसरे देशों के दूतावासों पर जो खर्च हो रहा है, हमारा छोटा सा पड़ोसी पाकिस्तान भी अपने दूतावासों पर जो खर्च करता है, उसके सामने हमारा खर्च नगण्य है । चार सौ करोड़ रुपये के बजट में वैदेशिक विभाग पर हम आठ करोड़ रुपया खर्च करते हैं । इन आठ करोड़ रुपयों का भी बहुत सा अंश आसाम में और अन्य बहुत से कामों में निकल जाता है । हमें इस विभाग की जो रिपोर्ट मिली है इससे ज्ञात होता है कि इस आठ करोड़ में केवल २७३ लाख रुपया हमारे ६१ दूतावासों पर खर्च होता है । इस समय दुनिया जितनी छोटी हो गयी है उसको देखते हुए और भारतवर्ष की जो प्रतिष्ठा है उसको देखते हुए चाहे और मदों में भले ही कुछ कम खर्च किया जाय लेकिन हमारे दूतावासों पर कुछ अधिक खर्च किया जाना चाहिए, यह मेरा नम्र निवेदन है । अन्त में मैं केवल एक ही बात और कहूंगा । इन दूतावासों को दो बातों की तरफ अधिक ध्यान देना चाहिए, एक तो प्रचार की ओर और दूसरे भारतीय संस्कृति की ओर । जहां तक संस्कृति का मामला है उसका भाषा से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है । मैंने राष्ट्र संघ में देखा कि वहां पर भिन्न भिन्न भाषायें बोली जाती हैं जैसे स्पेनिश, फ्रेंच, रूसी और अंग्रेजी । क्या वह समय नहीं आ सकता जब वहां पर हिन्दी भी बोली जाय । मैं तो उस दिन का स्वप्न देख रहा हूं जब चालीस करोड़ मानवों की यह हिन्दी भाषा भी वहां पर बोली जाय और जिस प्रकार दूसरी भाषाओं का वहां पर अनुवाद होता है, उसी प्रकार हिन्दी भाषा का भी वहां पर अनुवाद होगा । अन्त में मैं और अधिक न कह कर अपनी वैदेशिक नीति का हृदय से समर्थन करता हूं ।

डा० एस० पी० मुकर्जी (कलकत्ता दक्षिण-पूर्व): आजकल सभी देश यह कह रहे हैं कि वे शांति चाहते हैं । स्टालिन भी यही कहता था । हमारे शांति, शांति चिल्लाने से कुछ नहीं होगा । हम अपना अंशदान कर सकते हैं और कर रहे हैं कि हम युद्ध नहीं चाहते, क्योंकि युद्ध होगा तो उसका समस्त विश्व पर प्रभाव पड़ेगा । इस दृष्टि से हमारे प्रधान मंत्री की नीति की प्रशंसा हुई है ।

यह जो आशंका प्रकट की गई है कि आर्थिक मामलों में विदेशी शक्तियों पर अत्यधिक आश्रित होने के गम्भीर परिणाम हो सकते हैं, यह निर्मूल नहीं है। इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए।

परन्तु मैं तो भारत की वैदेशिक नीति की परख इस कसौटी पर करना चाहता हूं कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भारत सम्बन्धी मामलों में हमें सफलता मिली है या असफलता। इस दृष्टिकोण से देखें तो हमारी नीति दुःखद असफलता का इतिहास है। वे कौन से मामले हैं? पहला तो दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का मामला है। क्या हम उन उत्पीड़ितों के लिये कुछ कर पाये हैं? क्या हम लंका के भारतीयों के लिए कुछ कर पाये हैं? भारत स्थित विदेशी बस्तियों के लिये प्रधान मंत्री ने साहसपूर्ण घोषणा की है कि उन्हें भारत में मिलाना ही होगा। परन्तु किया क्या गया है?

भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों का विषय भी है। प्रधान मंत्री ने हमें कहा था कि हम देश के शत्रु की सहायता कर रहे हैं। यदि उनका आशय पाकिस्तान से था तो मुझे प्रसन्नता है कि उन्होंने पाकिस्तान को शत्रु तो समझा, चाहे हम पर आक्रमण करते हुए ही सही। पूर्वी बंगाल के अल्पसंख्यकों का प्रश्न महत्वपूर्ण है। पार-पत्र प्रणाली से भारी कठिनाइयां उत्पन्न हो गई हैं। नहरी पानी का विवाद है, निष्क्रांत सम्पत्ति का प्रश्न है और काश्मीर का प्रश्न है।

इन सभी मामलों में हमारी नीति असफल रही है। कूटनीति के क्षेत्र में कुछ अधिक दूरदर्शिता और शक्ति से हम कुछ प्राप्त कर सकते थे। भारत के आत्म-सम्मान, प्रतिष्ठा और हितों के विषय में हमारी विदेश नीति दुर्भाग्य से सफल नहीं रही है। शेष संसार के विषय में बड़ी बातें बनाने की बजाय यह अच्छा होगा यदि हम अपनी ही समस्याओं पर विचार करें जिन का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ता है।

रेडक्लिफ पंचाट की सिफारिशों के विषय में जो ब्रेग्गे न्यायाधिकरण आया था उसकी सिपारिशों को कार्यन्वित नहीं किया गया क्योंकि पाकिस्तान सहमत नहीं है।

पश्चिमी बंगाल में नाडिया जिले में पाकिस्तान की ओर से प्राय: आक्रमण होते रहते हैं, हत्या, लूट, अपहरण आदि होते हैं, पर सरकार विरोध-पत्र भेजने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकी है।

पाकिस्तान के आय-व्ययक में उन १८ करोड़ रुपये की कोई चर्चा नहीं है जो उसे भारत को देने हैं।

भारत में गत वर्ष १२८९ अपहृत महिलाओं का उद्धार किया गया परन्तु पाकिस्तान में केवल ४७४ का ही किया गया। इस विषय में भी पूर्ण असफलता हुई है।

नेपाल के विषय में भी हमारी नीति असफल रही है। वहां तिब्बत की ओर से खतरा है, हिमालय की अगमता समाप्त हो गई है, पर हमारी सरकार उस सामरिक महत्व के क्षेत्र की रक्षा के लिए क्या कर रही है, यह रिपोर्ट में नहीं बताया गया। नेपाल कांग्रेस का प्रस्ताव जो आज प्रकाशित हुआ है हमारी नीति पर एक दुःखद टिप्पणी है।

काश्मीर के विषय में रिपोर्ट में लिखा है कि "भारत ने संकल्प को तो स्वीकार नहीं किया क्योंकि वह मूल प्रश्नों पर उसकी आधारभूत स्थिति के विपरीत था, परन्तु शांतिपूर्ण निपटारे के लिए वार्ता करने के लिये अपनी तत्परता अभिव्यक्त की।" जब मूल भेद हैं तो वार्ता कैसी? अंतत: काश्मीर प्रश्न का होगा क्या? हम सुरक्षा परिषद् से कोई आशा नहीं कर सकते। हम उसके

[डा० एस० पी० मुकर्जी]

पास आक्रमण के प्रश्न को लेकर गये थे, राज्य के भारत में प्रवेश के प्रश्न को लेकर नहीं। आक्रमण सिद्ध हो चुका है, फिर भी सुरक्षा परिषद् हमारा साथ नहीं दे रही। भारत-प्रवेश का प्रश्न तो भारत और काश्मीर के बीच ही है। प्रधान मंत्री ने जनमत लेने का प्रश्न अवश्य उठाया था, परन्तु अब तो वहां केवल संविधान सभा के द्वारा ही इसका निर्णय हो सकता है। भारत का विभाजन हुआ था तब जनमत क्यों नहीं लिया गया। उस समय विधान सभाओं में जनता के सीमित मतदान द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों ने ही निर्णय कर दिया था। फिर वयस्क मताधिकार पर चुनी गई संविधान सभा भारत प्रवेश का निश्चय क्यों नहीं कर सकती ? इस भारत-प्रवेश के प्रश्न पर ही वहां आन्दोलन भी चल रहा है। इस प्रश्न को न्यायपूर्ण ढंग से तै करना ही होगा।

सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिए जो दमन-नीति अपनाई है वह सफल नहीं होगी। हमारे एक दूसरे को गालियां देने से कोई लाभ नहीं है। हमें तो जम्मू तथा काश्मीर सम्बन्धी प्रश्नों का हल ढूंढना चाहिए जोकि राजनैतिक हैं, आर्थिक हैं और प्रशासकीय हैं, और ठंडे दिमाग से समझौता करने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रधान मंत्री कहते हैं कि वे ग्राहम प्रतिवेदन से असहमत हैं फिर भी वार्ता के लिए तैयार हैं। वे वहां के आन्दोलन के विषय में भी ऐसा ही रुख क्यों नहीं अपनाते।

वैदेशिक कार्य मंत्रालय के व्यय के विषय में, मैं चाहता हूं कि हमें राजदूतावासों के कार्य के विषय में कुछ अधिक पता लगता। हो सकता है कि हमें उनके विषय में अत्युक्तिपूर्ण प्रतिवेदन आते हों। हम ४३८ करोड़ के आयव्ययक में से आठ करोड़ रुपये इस मंत्रालय पर खर्च कर रहे हैं। आस्ट्रेलिया में १,००० करोड़ के बजट में से वैदेशिक कार्य मंत्रालय पर दो करोड़ खर्च किया जाता है। राजदूतावासों के व्यय में बचत की गुंजाइश है। हम थाइलेंड, कम्बोडिया और वीतनाम में अपना प्रभाव बढ़ा सकते हैं। उन देशों से भारत का सहस्त्रों वर्षों से सम्पर्क है। वे अपनी आध्यात्मिक माता के निकट आना चाहते हैं। यह तभी हो सकता है जब हम उन देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करें।

चाहे हम सरकार से कितना भी मतभेद रखें, फिर भी यदि भारत की सुरक्षा को कोई संकट उत्पन्न होगा तो हम कंधा से कंधा भिड़ा कर देश के लिए खड़े हो जायेंगे।

श्री बी० शिवा राव (दक्षिण कनड़ा-दक्षिण) : साम्यवादी दल के उपनेता ने हमारी विदेश नीति की आलोचना की थी। कोरिया के विषय में प्रधान मंत्री ने अनेक बार बक्तव्य दिये हैं और भारतीय प्रतिनिधि मंडल की नेता श्रीमती विजय लक्ष्मी भी स्पष्टीकरण कर चुकी हैं कि भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने वह प्रस्ताव किन कारणों से रखा था। अतः मैं इस विषय में कोई नई बात नहीं बता सकता। गतिरोध जारी है और जब तक चीन को संयुक्त राष्ट्रों में सम्मिलित नहीं किया जाता तब तक जारी ही रहना संभव है।

जब कोरिया के विषय में भारतीय प्रस्ताव रखा जाने लगा तब प्रधान मंत्री की रचनात्मक राजनीतिज्ञता की बहुत सराहना की गई और इस बात पर खेद प्रकट किया गया कि सोवियत संघ और साम्यवादी चीन उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते। परन्तु वे ही राष्ट्र जो मुक्त कंठ से प्रधान मंत्री

की सराहना करते थे, अन्य प्रश्नों पर चर्चा होने के समय चुप हो गये, यह एक विचित्र बात थी। उदाहरण के लिए उपनिवेशवाद की समस्या ही है। प्रोफेसर मुखर्जी ने कहा है कि इस विषय में हमारा काम खराब रहा है। यह आश्चर्यजनक कथन है। वास्तव में इस विषय पर हमारा कार्य बहुत शानदार रहा है, वह किसी भी अन्य देश की तुलना में, सोवियत संघ भी उनसे अलग नहीं है, अच्छा रहा है। उपनिवेशवाद के समाप्त करने के प्रश्न पर विरोधी दल और सरकारी दल में कोई मतभेद नहीं है। स्पष्टतः उपनिवेश-धारी शक्तियां इस विषय में जिस पर समस्त एशिया एकमत है, सहमत नहीं हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में यह आशंका प्रकट की गई थी कि औपनिवेशिक सत्ता को तत्काल हटा देने का परिणाम यह हो सकता है कि उन प्रदेशों में साम्यवादी प्रभावों का विस्तार हो जाये। मुझ से हिन्द-चीन के विषय में पूछा गया था कि इस प्रश्न पर प्रधान मंत्री चुप क्यों हैं। मैंने कहा कि वहां की समस्या का तब तक कोई हल नहीं निकल सकता जब तक कि फ्रांस वहां से निकल न जाये और संयुक्त राष्ट्र वहां स्वतन्त्र हिन्द-चीन की स्थापना न करे जो कि संयुक्त राष्ट्रों का सदस्य हो। संयुक्त राज्य अमरीका का तो स्पष्ट कहना है कि वहां से फ्रांस के हटते ही साम्यवादी प्रभाव फैल जायेगा। फलतः वहां उलझनें बढ़ती जाती हैं। फ्रांस के पैर वहां से उखड़ रहे हैं परन्तु वह स्थिति को छोड़ना नहीं चाहता जो सैनिक, राजनैतिक तथा नैतिक, किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है।

यहां मध्यपूर्व प्रतिरक्षा संगठन के विषय में--विशेषतः पाकिस्तान के मन्तव्य के विषय में--चिन्ता प्रकट की गई है। वह संगठन तो अभी भ्रूण की अवस्था में ही है। परन्तु एक प्रतिरक्षा संगठन तो पहले ही विद्यमान है--वह है उत्तर अतलांतिक समझौता संगठन। जब वह संगठन यूरोप में बना था तब उसका उद्देश्य अपने सदस्य राष्ट्रों की सामूहिक आत्मरक्षा ही बताया जाता था। परन्तु अब उसके उद्देश्य में यह भी सम्मिलित कर दिया गया है कि "पश्चिमी संसार का कर्तव्य यह भी है कि उन प्रदेशों का संरक्षण, सहायता तथा विकास करे जहां से वह अपना कच्चा माल लेता है और जिन्हें वह अपना माल बेचता है। कोई कारण नहीं है कि सैनिक सुरक्षा होने पर बेल्जियम, ब्रिटेन, फ्रांस और पुर्तगाल अपना राजनैतिक कर्तव्य न निभा सकें। उन देशों पर संयुक्त राष्ट्र में और बाहर भी, संगठित अरब, अफ्रीका और भारतीय मतों का उत्तरोत्तर दबाव पड़ेगा।"

इससे पश्चिमी यूरोप के देशों की मनोवृत्ति का पता लगता है। इन संगठनों से क्या संयुक्त राष्ट्रों को बल मिलता है अथवा उनकी शक्ति कम होती है? संगठन के ये प्रयोजन संयुक्त राष्ट्रों के अधि-पत्र से मेल नहीं खाते। फ्रांस के प्रतिनिधि ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के गत सत्र में कहा था कि फ्रांस का उद्देश्य वृहद् फ्रांस के सभी भागों में फ्रांसीसी संस्कृति और परम्पराओं की स्थापना है। उसका यह कहना था कि समुद्र पार के प्रदेश, चाहे फ्रांस से सहस्रों मील दूर ह, परन्तु फिर भी उसके अखंड अंग हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पांडीचरी भी वृहद् फ्रांस का एक अंग है अतः अतलांतिक राष्ट्रों के हितों में बंगाल की खाड़ी का एक भाग भी सम्मिलित है। इसी प्रकार गोआ के विषय में भी कहा गया था। अतः मैंने महासभा में फ्रांसीसी प्रतिनिधि के दावे को तत्काल चुनौती दी। सीधी बात यह है कि विश्व के भिन्न भिन्न भागों में पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों की साम्राज्य-सत्ता, जो दो शताब्दियों से चली आ रही थी अब उनकी मुट्ठी से निकलती जा रही है।

उपनिवेशधारी राष्ट्रों में ब्रिटेन तो किसी हद तक कह भी सकता है कि उसने

[श्री.बी० शिवा राव]

अपने साम्राज्य का परित्याग कुछ कुछ किया है। श्री डीन एचेसन ने कहा था कि गत पांच छः वर्षों में ८० करोड़ पराधीन व्यक्तियों में से ६० करोड़ ने अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर ली है। इसमें से अधिकांश ब्रिटिश अधीनस्थ देशों में रहते थे। परन्तु फ्रांस, बेल्जियम और पुर्तगाल आदि अपने उत्तर-दायित्व को पूरा न करने के लिए नया उपाय अपना रहे हैं। वे कहते हैं कि उनके पास उपनिवेश तो हैं ही नहीं। वे तो वृहद् फ्रांस या वृहद् पुर्तगाल के अंग हैं। वे अधिपत्र की उन प्रतिज्ञाओं को पूरा नहीं करना चाहते कि पराधीन प्रदेशों के लोगों को स्वशासन या स्वतन्त्रता दी जानी है।

मुझे डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के इस कथन पर आश्चर्य है कि प्रधान मंत्री की नीति अंतिम पांच छः वर्षों में असफल रही है। मैं नहीं समझता कि वे प्रधान मंत्री से दक्षिण अफ्रीका या किसी अन्य समस्या के विषय में क्या करवाना चाहते हैं। यदि वे कुछ ठोस सुझाव देते तो अच्छा रहता।

हमारी नीति संयुक्त राष्ट्रों के सिद्धान्तों तथा उद्देश्यों को स्वीकार करने की है। हम लोकतंत्रात्मक उपायों और अहिंसा में विश्वास करते हैं। विश्व भर में प्रधान मंत्री का जो उच्च सम्मान है और भारत की जो प्रतिष्ठा है उससे पता लगता है कि प्रधान मंत्री की नीति ही ठीक नीति है।

श्री डी० एन० सिंह (मुजफ्फरपुर उत्तर-पूर्व) : आज अन्तर्राष्ट्रीय जगत में संक्रमण काल है। स्टालिन की मृत्यु से एक युग का अंत हो गया है। हमें आशा करनी चाहिए कि नवयुग शांति और पारस्परिक सद्भावना का युग होगा।

बीसवीं शती में सुरक्षा को क्षेत्र पर निर्भर माना जाने लगा है। इसी कारण राजनीति का स्थान सैनिक दृष्टिकोण ने ले लिया है। इस आधार पर मध्यपूर्व प्रतिरक्षा संगठन आदि बन रहे हैं। पर हमारी विदेश नीति का यह आधार नहीं है। शांति को सब से बड़ी चुनौती कोरिया है। कोरिया का कोई स्थायी हल तब तक नहीं निकल सकता जब तक कि लाल चीन की उपेक्षा की जाती है।

कुछ विरोधी सदस्यों ने हमारी विदेश नीति को आंग्ल-अमरीकी साम्राज्यवाद की पोषक बताया है। प्रो० मुखर्जी तो चाहते हैं कि हम सोवियत गुट से ही पूरी तरह मिल जायें। इसी समय हमारी दृष्टि सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारी विशालता, जनसंख्या, भौगोलिक स्थिति और आर्थिक संभावनाएं महान् हैं। यदि हम किसी भी गुट में मिल जायेंगे तो संतुलन बिगड़ जायेगा। अतः हमें कार्य-स्वतन्त्रता रखनी चाहिए। हमें अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए शांति की आवश्यकता है।

हम आंग्ल-अमरीकी गुट में कहां हैं? हमने चीन को मान्यता देने के लिए प्रयत्न किया, यालू की बमबारी पर दृढ़ता से काम लिया, जापानी शांति संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये।

यदि मध्यपूर्व प्रतिरक्षा संगठन में पाकिस्तान सम्मिलित हो जायेगा तो निरस्त्र युद्ध हमारी सीमा पर आ जायेगा। भारत-पाकिस्तान मतभेद के कारण अन्य राष्ट्रों को षड़यंत्र करने का प्रलोभन मिलता है। आवश्यकता इस बात की है कि भारत पाकिस्तान के बीच मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हों। दोनों में प्रतिरक्षात्मक तथा आर्थिक करार होना चाहिए।

[पंडित ठाकुर दास भार्गव अध्यक्ष-पद पर आसीन हुए]

श्रीमती सुचेता कृपलानी (नई दिल्ली) : गत कुछ मासों में दो घटनाएं हुई हैं जिनका अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में महत्व है—एक तो जनरल आइजनहोवर का अमरीकी राष्ट्रपति बनना और दूसरी मार्शल स्टालिन की मृत्यु ।

आइजनहोवर ने राष्ट्रपति बनते ही एशिया के अविकसित देशों को आर्थिक सहायता देने की नीति को प्रतिपादित किया । हमारे प्रधान मंत्री कहते हैं कि आर्थिक सहायता स्वीकार करने से हमारी राजनीति पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु मैं कई बार कह चुकी हूं कि ऐसी सहायता राजनैतिक बन्धनों से मुक्त नहीं हो सकती । आइजनहोवर ने स्पष्ट कर दिया है कि यह सहायता साम्यवाद विरोधी गुट को प्रबल बनाने के लिए है । अतः हमें अब इस पर विचार करना चाहिए । हम सहायता लेने के लिए आंग्ल-अमरीकी व्यापार-हितों को भारत में अधिकाधिक रियायतें दे रहे हैं ।

हमारी नीति किसी गुट से न मिलने की, शांति की ओर सब के साथ मैत्री की है । हमें दोनों गुटों के बीच में से अपना मार्ग बनाना पड़ता है । कभी एक पक्ष प्रसन्न हो जाता है और कभी दूसरा पक्ष प्रसन्न हो जाता है । हमारी सफलता का असली पता तभी लगेगा जब दोनों गुटों में भिडन्त हो जायेगी और हम युद्ध से दूर रह सकेंगे ।

हम बड़े बड़े राष्ट्रों पर बहुत अधिक निर्भर रह रहे हैं । कई छोटे राष्ट्र भी हैं जो शांति के उपासक हैं । यदि हम उन्हें एकत्र करके संगठित करें तो हम विश्व की स्थिति को शांति की ओर झुका सकते हैं । इस प्रकार हम बड़े राष्ट्रों पर भी प्रभाव डाल सकते हैं । चाहे उसे 'तीसरा गुट' कहिये या प्रधान मंत्री के शब्दों में 'तीसरा क्षेत्र' कहिये, परन्तु भारत को ऐसा सक्रिय प्रयास करना अवश्य चाहिए । पाकिस्तान, बर्मा, इंडोनेशिया, और अन्य मध्यपूर्व के देश जो दोनों गुटों के प्रभाव से मुक्त हों, उनकी सामान्य विदेश नीति और आर्थिक नीति बन सकती है ।

दोनों गुटों के बाहर हम ही एक बड़े राष्ट्र हैं अतः एशिया में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर जनमत का सूत्रण करने का हमारा विशेष उत्तरदायित्व है । चीन, जापान आदि तो पहले ही गुटों में हैं । हम बचे खुचे राष्ट्रों को अपने साथ मिला सकते हैं ।

इंडोनीसिया के मामले पर हमने एशियाई सम्बन्ध सम्मेलन बुलाया था जिससे उसे स्वतंत्रता संघर्ष में महान् सहायता मिली । परन्तु उसके पश्चात् कुछ नहीं किया गया । एशिया की राजनीति का एकीकरण नहीं हो रहा है । एशियाई देशों की समस्याएं समान हैं—निर्धनता, जनसंख्या का बाहुल्य आदि और वे देश अविकसित हैं । अतः उनका तीसरा गुट बनना ही चाहिए ।

मुझे राष्ट्रमंडल में रहने में कोई लाभ नहीं दिखाई देता । उससे हम यथेष्ट स्वतंत्र नीति का अवलंबन नहीं कर सकते । हमारी आर्थिक, वाणिज्यिक, वित्तीय—और यहां तक कि सैनिक—नीतियां भी ब्रिटेन के साथ संलग्न हैं । अभी ब्रिटिश तथा अमरीकी प्राधिकारियों ने चीन को निर्यात के विषय में कठोर नीति अपनाने का विनिश्चय किया है । मैं जानना चाहती हूं कि इस विषय में हमारी नीति क्या होगी ।

सैनिक प्रशासन को लीजिए । सैनिक सामान और प्रशिक्षण के विषय में हम ग्रेट ब्रिटेन पर कितने निर्भर हैं ? प्रधान मंत्री ने भी इसे स्वीकार किया है । रिपोर्ट में लिखा है कि ब्रिटेन में अपने उच्च आयुक्त के कार्यालय पर हम ५२·०८ लाख रुपये व्यय करते हैं जब कि वैदेशिक कार्यों के मुख्या-

[श्रीमती सुचेता कृपलानी]

लय पर कुल व्यय ६६·८५ लाख होता है जिसमें प्रकाशन शाखा भी सम्मिलित है। ब्रिटेन पर हमारे आश्रित रहने के कारण ही हमें सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। हमारे कोरिया सम्बन्धी प्रस्ताव पर इसीलिए सन्देह किया गया कि हमारा आंग्ल-अमरीकी गुट से इतना सम्पर्क है। अतः मैं नहीं समझ पाती कि राष्ट्र मंडल में रहने से हमें क्या लाभ है।

हम इंग्लिस्तान में महारानी एलिजाबेथ के राज्याभिषेक में भाग ले रहे हैं। वहां से अन्य देशों के प्रमुखों को निमंत्रण भेजा गया है परन्तु राष्ट्रमंडल में प्रधान मंत्रियों को निमंत्रण भेजा गया है क्योंकि वहां के प्रमुख महारानी के ही प्रतिनिधि समझे जाते हैं। हमारा राष्ट्रपति महारानी का प्रतिनिधि नहीं है परन्तु फिर भी उन्हें निमंत्रण नहीं भेजा गया, अपितु प्रधान मंत्री को ही भेजा गया। कहा जाता है कि यह वैयक्तिक निमंत्रण है परन्तु ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समारोह में इस देश का प्रतिनिधित्व सरकारी तौर पर होना है, वैयक्तिक तौर पर नहीं। मैं जानना चाहती हूं कि राष्ट्रमंडल में हमारी स्थिति क्या है, अन्य देशों के समान ही है या उनसे भिन्न।

राष्ट्रमंडल में होने के कारण हम दक्षिण अफ्रीका के प्रश्न को हल नहीं कर पा रहे हैं। हमारे गणराज्य को 'कुली-गणराज्य' कहा जाता है। इससे हमारे आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचती है।

हमें खेद है कि अपने पड़ौसी पाकिस्तान से हमारे सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं। परन्तु हमें अन्ततोगत्वा साथ खड़े होना पड़ेगा। पाकिस्तान की हाल ही की घटनाओं पर हमें गम्भीर चिन्ता है।

जम्मू और काश्मीर में जो आन्दोलन हो रहा है उससे वहां की समस्या और भी जटिल हो जाती है। इस प्रकार का संघर्ष देश के हित में नहीं है और प्रधान मंत्री को उसका कोई इलाज निकालना चाहिए।

हमने बहुत से राजदूतावास खोले हैं परन्तु यूगोस्लाविया में कोई नहीं खोला। यह एक भारी कमी है जिसे पूरा करना चाहिए।

मैंने देखा है कि विदेशों में हमारे राजदूतावासों में छोटी श्रेणी के कर्मचारियों को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हें वेतन कम मिलता है, मकान की तथा अन्य समस्याएं भारी हैं, फिर भी उन्हें अच्छा कार्य करने पर कोई श्रेय नहीं दिया जाता।

हमारे वैदेशिक कार्य विभाग की प्रकाशन शाखा का कार्य संतोषजनक नहीं है। साहित्य कम प्रकाशित होता है और ठीक प्रकार का नहीं होता। हमें अतीत की महानता का वर्णन करने की बजाय अपनी आजकल की प्रगति का वर्णन करना चाहिए।

इतना सब कुछ होने पर भी मैं वैदेशिक नीति के आधारभूत सिद्धान्तों का समर्थन करती हूं।

श्री जोशिम अलवा (कनारा) : इस युग में हम दो युद्ध देख चुके हैं और अब एक निरस्त्र युद्ध देख रहे हैं।

फ्रेंकलिन रूजवेल्ट की मृत्यु के पश्चात् एक महान् नीति का अंत हो गया। उनके उत्तराधिकारी ने उनकी नीति को सर्वथा उलट दिया। उनकी नीति थी कि मानवीय सम्बंधों का विकास किया जाये, एक ही विश्व में सभी प्रकार के लोग साथ रह सकते हैं। ट्रूमैन के आने पर वह नीति बदल गई, शेष संसार के साथ मानवीय सम्बन्ध समाप्त कर दिये गये। उन्होंने नकारात्मक नीति अपनाई। आइजनहोवर ने उसी नीति की परिपुष्टि की है। ट्रूमैन का सिद्धान्त यह है

कि "वाह्य दबाव से अल्पसंख्यकों के अधीनीकरण को रोकने वाले लोगों की सहायता करनी चाहिए।"

इसके विपरीत नेहरू सिद्धान्त है कि हम किसी गुट के साथ नहीं हैं। हम किसी राष्ट्र के या नस्ल के शत्रु नहीं हैं। हम पड़ौसी देशों से सहयोग तथा परामर्श के हेतु एक प्रादेशिक संगठन बनायेंगे। यह रूजवेल्ट सिद्धान्त के समान है।

मुझे एक प्रसिद्ध विदेशी ने बताया था "हमारी वैदेशिक नीति तो बस अमरीका की दासता ही है।" रूजवेल्ट की मृत्यु पर उनके पुत्र इलियट ने कहा था "अंग्रेजों और अमरीकियों ने सबसे पहले घूंसा दिखाया था और फिर निरस्त्र युद्ध आरम्भ कर दिया।"

श्रीमान्, हमें भारत में गोआ तथा पांडीचेरी की विदेशी बस्तियों को नहीं भूलना चाहिए। ऐसी फ्रांसीसी बस्तियों का क्षेत्रफल १९६ वर्ग मील है और ३,१६,४२५ की जनसंख्या है। पुर्तगाली बस्तियों का क्षेत्रफल १२०० वर्गमील है। जब तक फ्रांस भारत में अपनी बस्तियों को छोड़ने के लिए तैयार न हो तब तक हम हिन्द चीन में मध्यस्थता भी स्वीकार नहीं कर सकते। हमें भारत से विदेशी शक्तियों को निकाल फेंकना चाहिए। अतलांटिक संगठन या मध्यपूर्व संगठन गोआ को अपने क्षेत्र में सम्मिलित कर लेंगे तो हमें खतरा हो सकता है क्योंकि बम्बई गोआ के निकट है। रेडिओ गोआ भारत के लिए खतरा बन सकता है।

हमें पूर्वी अफ्रीका में अपने भाइयों को नहीं भूलना चाहिए। हमने संसत्सदस्य दीवान चमन लाल को उनकी कानूनी सहायता के लिए भेजा है। परन्तु वहां भारतीयों को सदा अफ्रीकी बन कर रहना चाहिए और महात्मा गांधी के प्रेम के आदर्श पर चलना चाहिए।

विदेशों में प्रचार के लिए हमने गत वर्ष आठ करोड़ रुपये रखे थे और इस वर्ष नौ करोड़ रुपये रखे हैं। अमरीका प्रचार पर ८० करोड़ रुपये व्यय करता है। रूस भी प्रचार पर बहुत व्यय करता है। परन्तु हमें दोनों में से किसी के वहकाने में नहीं आना चाहिए।

जापान पर वैसे तो तेरह शक्तियों का नियंत्रण है परन्तु कार्य रूप में वहां अमरीका का ही शासन है। कोरिया युद्ध आरम्भ होने पर अमरीका के समझ में आ गया कि उनके लिए प्रत्येक भूभाग का महत्व है। हमें अहिंसा के मार्ग पर चलना चाहिए चाहे विश्व हमारी निन्दा करे या स्तुति करे।

हमें अपने वैदेशिक सेवा के लोगों को अधिक वेतन देने चाहिएं जिससे कि वे प्रलोभन में न फंसें। वे चरित्र योग्यता और देशभक्ति से युक्त व्यक्ति होने चाहिए।

हमें उत्तर अफ्रीका—मोरक्को, अलजीरिया, ट्यूनिस, लिबिया, टेनजियर आदि में अपने प्रतिनिधि रखने चाहिए। संसद् की एक समिति होनी चाहिए जो सभी राजदूतों की नियुक्ति का अनुमोदन करे। चाहे वह समिति आज बने या तीन चार वर्ष पश्चात्। अमरीका में सीनेट की ऐसी ही समिति है।

श्री सादत अली खां (इब्राहीम पटनम्): हमें स्वाधीनता मिले केवल छः वर्ष हुए हैं। इन वर्षों में हमें अपनी वैदेशिक सेवा का निर्माण करना पड़ा जो कठिन कार्य था। प्रधान मंत्री के प्रयत्नों से आज भारत की प्रतिष्ठा विश्व में बहुत है। हम विश्व के सभी भागों में स्वतन्त्रता संघर्ष का समर्थन करते हैं।

हमारी स्वतन्त्रता की द्योतक यह बात है कि आज कई राष्ट्र वैदेशिक मामलों में पथ-प्रदर्शन के लिए भारत की ओर ताकते हैं। जापान भी हमारी नीति में अभिरुचि रखता,

[श्री सादत अली खां]

है और अमरीकी भी उसकी सराहना करने लगे हैं। हमें पाकिस्तान से विशेषत: अच्छे सम्बन्ध बनाने चाहिए और संयुक्त प्रतिरक्षा व्यवस्था बनानी चाहिए। हम तो इसके लिए सदा तैयार हैं परन्तु पाकिस्तान में हमारे विरुद्ध अभी गालियों का बाजार गर्म है। यदि पाकिस्तान मध्यपूर्व प्रतिरक्षा संगठन में शामिल होता है तो उसकी गलती होगी। हमें तो ऐसी किसी कार्रवाही के विरुद्ध अपनी व्यवस्था पूरी रखनी चाहिए।

मध्यपूर्व में भी हमारी नीति की सराहना होती है परन्तु हमें वहां एक प्रतिनिधिमंडल भेजना चाहिए। हमें विदेशों में अपने प्रचार-कार्य पर अधिक ध्यान देना चाहिए क्योंकि अभी हमारे विरुद्ध भ्रांतियां प्रचलित हैं।

डा० एन० बी० खरे (ग्वालियर) : मैं हमारी वैदेशिक नीति से संतुष्ट नहीं हूं। चाहे इससे हमारे प्रधान मंत्री की प्रतिष्ठा संसार में बड़ी हो, परन्तु हमें इससे कोई लाभ या शक्ति प्राप्त नहीं हुई।

उत्तर-पूर्व सीमान्त की स्थिति चिन्ता-जनक है। एक ओर से पाकिस्तान के सीमावर्ती प्रदेशों से लोग घुसे आते हैं। दूसरी ओर आसाम तथा बर्मा सीमाओं के प्रदेश के नागा लोग विचित्र लोग हैं जो ईसाई प्रचारकों के प्रभाव में हैं। वे प्रचारक उनमें पार्थक्य की भावना उत्पन्न कर रहे हैं और देश प्रेम को मिटा रहे हैं।

कांग्रेस शासन में विदेशी धर्मप्रचारकों की संख्या २५ प्रतिशत बढ़ गई है और धर्म परिवर्तनों की भी संख्या २५ प्रतिशत ही बढ़ी है। यह गम्भीर बात है।

शिक्षा व प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्री (मौलाना आज़ाद) : यह फिगर कहां से मालूम हुआ ?

डा० एन० बी० खरे : अखबारों में पढ़ते हैं साहब, और कैसे मालूम हुआ।

मौलाना आज़ाद : मैंने तो अभी तक पढ़ा नहीं।

डा० एन० बी० खरे : आपने बराबर पढ़ा नहीं होगा।

यदि इन धर्म-परिवर्तनों को होने दिया गया तो पता नहीं हमारी धर्म-निरपेक्षता रहेगी या नहीं। गत वर्ष दक्षिण भारत में विदेशी धर्मप्रचारकों के एक सम्मेलन में एक प्रचारक ने कहा था कि वे कांग्रेस शासन में खुश हैं क्योंकि धर्म-परिवर्तनों की संख्या बढ़ गई है।

मैंने १९५० में चेतावनी दी थी कि हमें नेपाल के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उस समय मुझे राणाशाही का समर्थक बताया गया। परन्तु अब हम देखते हैं कि वहां तिब्बत के मार्ग से साम्यवाद के प्रवेश का या आक्रमण की तात्कालिक आशंका है।

हमारी नीति तटस्थता की है परन्तु हम राष्ट्रमंडल में रेशम की डोरी से बंधे हैं। अमरीका हम पर कृपा करके सहायता दे रहा है। फिर हम इन दो राष्ट्रों को 'नहीं' कैसे कह सकते हैं। हमें उनके समक्ष झुकना ही पड़ेगा क्योंकि वे अच्छे हैं, कृपालु हैं। दूसरी ओर चीन दबाव डाल कर तिब्बत के मार्ग से नेपाल में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहा है। यह अच्छी तटस्थता है कि किसी के समक्ष हम अच्छाई के कारण झुकें और किसी के समक्ष दबाव के कारण !

पूर्वी बंगाल के विषय में तो बहुत कुछ कहा जा चुका है। पाकिस्तान द्वारा भारत के राज्य क्षेत्र में आक्रमण की घटनायें होती हैं और हम केवल विरोध-प्रदर्शन कर देते

हैं। देश में तो अपने मित्रों के विरुद्ध बल-प्रयोग किया जाता है परन्तु पाकिस्तान के विरुद्ध नहीं।

जम्मू और काशमीर के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। गत जुलाई में भारत तथा काश्मीर में निकाह हुआ था . . . .

सभापति महोदय : हम वैदेशिक कार्यों पर विचार कर रहे हैं। काश्मीर उनमें नहीं आता।

डा० एन० बी० खरे : दक्षिण अफ्रीका में भारतीय प्रवासियों की पत्नियों को उस देश में प्रवेश करने से रोकने का प्रयास हो रहा है। हम कुछ भी नहीं कर सकते—यही हमारी वैदेशिक नीति है।

हम सामुदायिक (कम्युनिटी) योजनाओं के लिए विदेशी सहायता ले रहे हैं। 'कम्युनिटी' शब्द का बहिष्कार कर देना चाहिए, उसम सम्प्रदायवाद (कम्युनलिज्म) है।

सभापति महोदय : माननीय सदस्य असंगत बातें कह रहे हैं।

श्री शेषगिरि राव (नंदयाल) : हमारी नीति शांति और मित्रता की है। इसका अर्थ यह है कि हम दोनों गुटों में से किसी से नहीं मिलना चाहते। इसके लिए शक्ति चाहिए, तभी हमारी तटस्थता बनी रह सकती है। १९४९ तक अमरीका ने हमें अपने गुट में मिलाने का बहुत प्रयत्न किया। हमारे प्रधान मंत्री को अमरीका भी बुलवाया गया। परन्तु हम अपनी तटस्थता पर दृढ़ रहे। अब अमरीका ने भारत को शिल्पिक सहायता देना आरम्भ कर दिया है जिससे कि उसे बदले में कच्चा माल मिल सके जो युद्ध के लिए उपयोगी हो। वे दान के बहाने किसी न किसी तरह भारत सरकार को हथियाना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त वे भारत भर में विशेषज्ञों का जाल फैलाना चाहते हैं। सरकार को इस पर ध्यान देना चाहिए। अमरीकी लोग डालर के द्वारा सरकारी स्तर पर अपना प्रभाव फैलाना चाहते हैं। हमें सहायता तो लेनी चाहिए परन्तु युद्ध या आपात में उन्हें कच्चा माल नहीं देना चाहिए।

उपनिवेशों के विषय में हम समझते हैं कि हमारी नीति अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण है, परन्तु अपने देश में ही हम विदेशी बस्तियों के विषय में कुछ नहीं कर पाते। हमारी सरकार फ्रांस तथा पुर्तगाल को सुझाव भेजती रहती है। यह पर्याप्त नहीं है। हमें उन देशों में "राष्ट्रीय आन्दोलन" आरम्भ करवाना चाहिए जिससे कि वहां की सरकारों के लिए प्रशासन चलाना असंभव हो जाये।

हमारी वैदेशिक नीति के प्रचार के लिए हमारे पास अधिक प्रचारक चाहिये। इसके लिए लोगों को प्रशिक्षण मिलना चाहिए।

प्रो० मैथ्यू (कोट्टयम) : हमारी वैदेशिक नीति में सबसे बड़ी यह बात है कि वह नैतिक रूप में ठीक है। नैतिकता के नाम पर हंसना नहीं चाहिए। यह भी नहीं सोचना चाहिए कि उससे हमें क्या मिला है। ठीक तो ठीक ही है और अंततोगत्वा कल्याणकारी भी होता है। हमारी नीति क्या है? हम संसार के किसी गुट से मिलना नहीं चाहते और प्रत्येक प्रश्न पर अपना स्वतंत्र निर्णय करने का अधिकार सुरक्षित रखते हैं। परन्तु हमने संसदीय लोकतंत्र को स्वीकार कर लिया है और हमने सभी नागरिकों को किसी भी धर्म का अवलंबन करने का अधिकार दिया है अतः हम कुछ राष्ट्रों की तुलना में दूसरे राष्ट्रों के अधिक निकट हैं। परन्तु इससे हमारी नीति की स्वतन्त्रता पर कोई असर नहीं पड़ता। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि हम आर्थिक या

[प्रो० मैथ्यू]

सांस्कृतिक आधार पर किसी राष्ट्र से संधि नहीं कर सकते। कोई भी राष्ट्र आजकल अलग थलग नहीं रह सकता।

पाकिस्तान से सम्बन्धों के विषय में भावनायें उत्तेजित हो जाती हैं। परन्तु यदि भावनाओं से तर्क पर आवरण पड़ जाये तो हमारी भावनायें हमें गलत मार्ग पर ले जा सकती हैं। एक विरोधी सदस्य ने कहा है कि सुरक्षा परिषद के काश्मीर प्रस्ताव को हमने स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, परन्तु हम वार्ता जारी रखने के लिए तैयार थे, उसमें कुछ विरोधाभास था। ऐसी बात नहीं है। हम उस प्रस्ताव के आधार पर वार्ता के लिए तैयार नहीं थे, परन्तु उससे पहले की स्थिति से आगे बढ़ने के लिए तैयार थे। हम अधीर नहीं हुए, परन्तु धैर्य का अर्थ कायरता नहीं होना चाहिए। यदि हम पर कोई ईंट फेंके तो हमें पत्थर से जवाब देने के लिए तैयार रहना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका में हमारे भाइयों को बहुत कठिनाई हो रही है और हमारा हृदय उनके साथ सहानुभूति से उमड़ पड़ता है परन्तु हमें सीमा में ही कार्य करना पड़ता है।

नैतिक पुनरुत्थान आन्दोलन पर आपत्ति करना मेरे समझ में नहीं आता। उसके मूल आधार हैं—पूर्ण शुद्धता, पूर्ण सत्य और पूर्ण उदारता। जो घृणा तथा हिंसा की क्रूर कला का प्रचार करना चाहते हैं उन्हें यह पसन्द नहीं हो सकता।

डा० खरे ने कुछ व्यक्तियों के ईसाई बनने पर जो कुछ कहा है वह मेरे विचार में राजनैतिक प्रश्न कदापि नहीं है। तिरूवांकुर कोचीन में कई पिछड़ी हुए जाति के ईसाई हिन्दू बन गए हैं। उनकी इच्छा है। इसमें राजनैतिक प्रश्न कहां है ?

६ म० प०

मेरे समझ में यह भी नहीं आता कि हमारे राष्ट्र मंडल में रहने पर क्या आपत्ति है। जैसे व्यक्ति अलग थलग नहीं रह सकते इसी प्रकार राष्ट्र भी नहीं रह सकते। सीमित प्रयोजनों के लिए समता के आधार पर किसी से मेल करना अच्छा है, स्वाभाविक है, उचित है और ठीक है। जैसे हम राष्ट्र मंडल के सदस्यों पर दबाव नहीं डाल सकते इसी प्रकार वे भी हम पर दबाव नहीं डाल सकेंगे। वास्तव में जो लोग किसी राष्ट्र से हमारे सम्बन्धों की निन्दा करते हैं, वे यह चाहते हैं कि हम उनकी इच्छानुसार किसी विशेष गुट में मिल जायें। मुझे विश्वास है कि हमने स्वतन्त्रता की जो नीति अपनाई है वह ठीक है और इतिहास की कसौटी पर सफल उतरेगी।

श्री पुन्नूस (आल्लप्पी) : दूसरी ओर की वक्तृताओं को मैंने बहुत ध्यान से सुना है। एक माननीय सदस्य ने कहा कि हमारी विदेश नीति पर संयुक्त राष्ट्रों में बहुत वाही वाही हुई है। मेरे पूर्ववर्ती वक्ता ने उस नीति के नैतिक पहलू पर बल दिया। परन्तु ये दोनों बातें निस्सार हैं। आज अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत गम्भीर है। उपनिवेशवाद का प्रश्न है, और कुछ आक्रमणकारी राष्ट्र अन्य देशों के मामलों में टांग अड़ा रहे हैं। प्रश्न यह है कि हमने अपने कोरिया प्रस्ताव में जो बात रखी थी, उससे क्या उस गम्भीर स्थिति में कोई सुधार हुआ है। यदि युद्ध हो जाये तो उसका सब पर प्रभाव पड़ेगा, हम पर भी। पान-मुन-जोन की बातचीत में ६१ बातों पर समझौता हो गया परन्तु ६२ वीं बात पर नहीं हुआ। सदन को स्मरण होगा कि जेनेवा अभिसमय को ६० से अधिक राष्ट्रों ने स्वीकार किया था। उसके

अनुच्छेद १८० में लिखा है कि सक्रिय युद्ध के बन्द होते ही युद्ध बन्दियों को तत्काल छोड़ दिया जायेगा। एक अन्य अनुच्छेद में लिखा है कि युद्ध बन्दी किसी हालत में इस अभिसमय द्वारा उन्हें प्रदान कराये हुए अधिकारों का परित्याग नहीं करेंगे। पर हमने इस पर क्या किया? हमने कहा कि युद्ध बन्दियों का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ पर छोड़ दिया जाये जो स्वयं इस युद्ध में एक पक्ष है। चीन के प्रधान मंत्री ने पेशकश की है कि "युद्ध को बन्द कर दीजिये जिससे कि आगे कोई रक्तपात न हो। इसके पश्चात् हम साथ बैठकर बात कर सकते हैं।" नैतिक पुनरुत्थान के समर्थक प्रो० मैथ्यू बतायें कि यह बात नैतिक है या नहीं। नैतिक पुनरुत्थान वाले पूर्ण सत्यता की बात तो करते हैं परन्तु उन्हें मलाया में अंग्रेजों की स्थिति में, हिन्दचीन में फ्रांसीसियों की स्थिति में, केनिया में अंग्रेजों के कारनामों में और अणु की कूटनीतिज्ञता में कोई दोष दिखाई नहीं देता। मुझे नैतिक पुनरुत्थान में यह कठिनाई दिखाई देती है।

प्रधान मंत्री ने ठीक कहा है कि हम सभी अंतर्राष्ट्रीय मामलों का ठेका नहीं ले सकते। परन्तु हमें यह तो स्पष्ट बताना चाहिए कि अंग्रेजों और मलायावासियों में से हम किस की ओर हैं। श्री बेवन ने कहा है कि मलाया में यह कठिनाई है कि किसे शक्ति सौंपी जाये। यही बात सदा कही जाती रही है। औपनिवेशिक देशों का यही शोषण आज झगड़े का कारण है। मैं साम्यवादी नहीं हूं परन्तु मेरा यह विश्वास है कि सोवियत देशों और चीन जनतंत्र की नीतियां शांति के अधिक निकट हैं। मैं यह नहीं चाहता कि हम उस गुट की प्रत्येक बात में हां में हां मिलाने लगें। परन्तु हमें यह घोषणा कर देनी चाहिए कि हम सभी प्रकार के उपनिवेशवाद के और पिछड़े हुए देशों में हस्तक्षेप के विरुद्ध हैं। ठीक लोकमत सेनाओं के लिए सहायक होता है, अतः आज जनमत को बरगलाने का बहुत प्रयत्न किया जा रहा है।

माननीय सदस्य श्री शिवाराव ने कहा था कि हमारी नीति को संयुक्त राष्ट्रों में अनुमोदन प्राप्त हुआ। परन्तु उसका फल क्या हुआ? युद्ध अभी जारी है। संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार अधिक कठोर बन गई है और 'एशियाई एशियाइयों से लड़ेंगे' यह नीति उन्होंने घोषित कर दी है। और उस समय एशियाई राष्ट्रों को ही एकत्र करके अपने पक्ष में उसने मत लिये थे।

अब समय है कि हमें अपनी साम्राज्यवाद-विरोधी नीति को स्पष्ट कर देना चाहिए। ऐसा न हो कि हमारे आर्थिक सम्बन्ध और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हमें अमरीका और ब्रिटेन के इतना निकट ले जायें कि हम अपना ठीक कर्तव्य न निभा सकें।

सभापति महोदय : कटौती प्रस्तावों के विषय में सदस्यों ने सचिव को सूचना दे दी है।

कटौती प्रस्ताव सं० २९८ में राजदूतों तथा उच्चायुक्तों तथा राज्यपालों को अनुसूचित जातियों में से नियुक्त करने का प्रश्न है। 'तथा राज्यपाल' ये शब्द हटा दिये गये हैं क्योंकि यह उस मंत्रालय का विशय नहीं है।

प्रस्तावक का नाम	शीर्षक	संक्षिप्त विषय	कटौती की राशि
श्री एच० एन० मुखर्जी	आदिमजातीय क्षेत्र	सामाजिक सेवाओं तथा अन्य प्रयोजनों के लिए व्यय ।	१०० रु०
श्री लंका सुन्दरम	वैदेशिक कार्य	वैदेशिक कार्य में टालने की नीति	,,
श्री एम० एस० गुरुपाद-स्वामी (मैसूर)	,,	(१) ठीक तटस्थ वैदेशिक नीति का पालन करने में सरकार की असफलता (२) मध्यपूर्व प्रतिरक्षा संघटन के प्रति भारत का दृष्टिकोण (३) पाकिस्तान का तुष्टिकरण	,,
कुमारी एनी मस्करीन (त्रिवेन्द्रम)	,,	एशियाई लोगों में शांति प्रचार के लिये भारत का नेतृत्व	,,
श्री टी० के० चौधरी (बरहामपुर)	,,	राष्ट्रमंडल से निकलना	,,
श्री ए० न० पी० दामोदरन (तेलिचेरी)	,,	लंका में भारतीयों के हित की रक्षा करने में सरकार की असफलता	,,
,,	,,	भारत में फ्रांसीसी तथा पुर्तगाली बस्तियों को समाप्त करने की आवश्यकता	,,
श्री एच० एन० मुखर्जी	,,	संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधि मंडल की रचना	,,
,,	,,	सुभाषचन्द्र बोस की कथित मृत्यु के विषय में तथ्य मालूम करना	,,
श्री नाना दास (ओंगोल-रक्षित-अनुसूचित जातियां)	,,	भारतीयों की पत्नियों तथा बच्चों को दक्षिण अफ्रीका म प्रवेश की सुविधाएं,	
श्री पुन्नूस (आल्लप्पी)	,,	एकसम शांति नीति पर चलने में सरकार की असफलता	,,
श्री जाटववीर (भरतपुर-सवाई माधोपुर-रक्षित-अनुसूचित जातियां)	,,	अनुसूचित जातियों के उच्चायुक्तों तथा राजदूतों की नियुक्ति ।	,,
श्री एन० श्रीकान्तन नायर (क्विलोन व मावेलिक्करा)	,,	प्रव्रजन व्यवस्था में भ्रष्टाचार तथा नौकरशाही तरीके ।	,,
,,	,,	केराला के लोगों को बोरनियो, अंदमान आदि में बसने की सुविधाएं प्रदान करना	,,
श्री एन० पी० दामोदरन	,,	उच्चायुक्तों और राजदूतों की नियुक्ति	
श्री पी० एन० राजभोज (शोलापुर-रक्षित-अनुसूचित जातियां)	,,	अनुसूचित जातियों के उच्चायुक्तों और राजदूतों की नियुक्ति	,,
,,	,,	अनुसूचित जातियों के लोगों के लिए बसने की सुविधाएं	,,
श्री तुषार चटर्जी (श्री रामपुर)	चन्द्रनगर	चन्द्रनगर प्रशासन का अलोकतंत्रीय होना	,,

सभापति महोदय : माननीय सदस्यों ने चिटें भेजी थीं और उनके प्रस्तावों को प्रस्तावित हुए समझ लिया जायेगा ।

श्री एन० श्रीकान्तन नायर : भारत की वैदेशिक नीति सदा घुटने टेकने की नीति रही है । हमारी नीति ब्रिटेन की नीति से बंधी हुई है । यदि हम स्वतन्त्र वैदेशिक नीति पर चलते तो हमारी गृह नीति भी वह क्रांतिकारी नीति होती जिसकी पंडित जवाहर-लाल नेहरू से, जो कभी समाजवादी थे, आशा की जाती थी । इससे हमारे आंतरिक प्रशासन में आमूल परिवर्तन हो जाता । हमें किसी गुट में तो नहीं मिलना चाहिए परन्तु उन गुटों की प्रतिद्वंदता से लाभ उठाना चाहिए । हमारे यहां कोरे आदर्शवादी हैं, कोई व्यवहारिक राजनीतिज्ञ नहीं है । हमें अपने घर की समस्याओं पर विचार करना चाहिए, हमारी नारियों का अपहरण होता है और विश्व भर में हमारे राष्ट्रजनों को पद-दलित किया जाता है । हम दक्षिण अफ़्रीका तथा लंका के साथ राष्ट्रमंडलीय सम्मेलनों में बैठते हैं । वे हमें ठोकर मारते हैं और हम उनके साथ शिष्टाचार की बातें करते हैं । हमने अपने देश में पूंजीवादियों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया है, और बाहर भी हमने पूंजीवादियों के समक्ष घुटने टेक दिये हैं ; हमें अपने से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए और यह डींग नहीं हांकनी चाहिए कि हम विश्व की राजनीति में एक महान शक्ति हैं ।

हमारे लंदन स्थित उच्चायुक्त के कार्यालय के तथाकथित गोलमाल के विषय में हम बहुत कुछ सुन चुके हैं । प्रधान मंत्री ने जांच करने का आश्वासन दिया था, परन्तु कुछ नहीं किया ।

हमारे प्रव्रजन कार्यालयों में भी भारी गोलमाल होते रहते हैं । मद्रास के प्रव्रजन कार्यालय में एक व्यक्ति श्री के० सदानन्दम की हत्या की गई थी ।

वैदेशिक कार्य उपमंत्री (श्री अनिल के० चन्दा) : यह प्रश्न न्यायालय के विचाराधीन है ।

सभापति महोदय : न्यायाधीन मामलों पर माननीय सदस्य को कुछ नहीं कहना चाहिए ।

श्री एन० श्रीकान्तन नायर : मद्रास के प्रव्रजन कार्यालय में जाते हुए लोगों को भय लगता है अतः वे अपने पत्रादि लेकर विदेशों को नहीं जा पाते । वहां का प्रव्रजन पदाधिकारी लोगों को गालियां देता है, उनका अपमान करता है और क्रूर व्यवहार करता है । इसकी कई शिकायतें हो चुकीं परन्तु कोई कार्यवाही नहीं की जाती । मेरे राज्य में जनसंख्या बहुत ज्यादा है परन्तु उन्हें बाहर विदेशों में जाने का अवसर नहीं मिलता । कहा जाता है वे बोर्निया, अंदमान आदि स्थानों पर जाकर बस सकते हैं परन्तु उन्होंने आवेदन-पत्र दिये तो कोई उत्तर नहीं मिला ।

हमें अपनी वैदेशिक नीति पर गर्व नहीं हो सकता । प्रधान मंत्री को हमारे देश के विनियमित कूटनीतिज्ञों पर विश्वास नहीं है । कुछ व्यक्तियों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है, विशेषतः जबकि वे प्रधान मंत्री के सम्बन्धी हों, तो इससे राज्यों में भी कुल-पोषण की प्रवृत्ति घर कर जाती है ।

श्री पाटस्कर (जलगांव) : हमारी वैदेशिक नीति को नकारात्मक बताया गया है । वास्तव में यह नीति क्रियात्मक है और उसका उद्देश्य विश्व की युद्धप्रिय शक्तियों के झगड़ों से दूर रहना है और शांति बनाये रखना है, जिससे कि युद्ध न हो, युद्ध, जिसे मानव नहीं चाहता, केवल कुछ प्रशासन आरूढ़ व्यक्ति चाहते हैं ।

[श्री पाटस्कर]

हमें स्वतन्त्रता मिली उस समय निरस्त्र युद्ध आरम्भ हो चुका था। संसार की कुछ शक्तियां अपने प्रभाव क्षेत्रों को बढ़ाने का प्रयत्न कर रही थीं। आज संसार में दो गुट हैं जिनके नेता हैं—सोवियत संघ तथा अमरीका। यह तो सच ही है कि ऐसी शक्तियां हैं जो हमारे देश के पूर्व के देशों को इस झगड़े में फंसाना चाहती हैं। एशिया तथा पूर्व के लोगों की आर्थिक कठिनाइयों से कुछ वर्ग अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। एक मनोवैज्ञानिक युद्ध चल रहा है। दूसरा गुट कुछ अन्य देशों पर प्रभाव डालने का प्रयत्न कर रहा है। हिमालय के उत्तर के देशों में एक विशेष विचारधारा है और उन्हें लौह-आवरण के देश कहते हैं। दूसरे गुट हैं जो मिश्र, तुर्की या ईरान की घटनाओं से लाभ उठाना चाहते हैं। हमें वास्तविकता पर विचार करना चाहिए। ईरान की घटनाओं से अभी चाहे हमारा कोई सम्बन्ध न हो, परन्तु उसके कारण कभी विश्व के अधिकांश भाग में आग भड़क सकती है।

[**उपाध्यक्ष महोदय** अध्यक्ष-पद पर आसीन हुए]

कई शक्तियां एशिया की स्थिति से लाभ उठाना चाहती हैं। इसी प्रकार मध्यपूर्व तथा पूर्व में भी गड़बड़ है। यूरोप में कुछ देशों की प्रतिरक्षा के लिए अतलांतिक पेक्ट बना हुआ है। यद्यपि वास्तविक युद्ध समाप्त हो गया है, परन्तु स्थिति ऐसी है कि हमें अलग रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

श्रीमती सुचेता कृपलानी ने कहा है कि हमें बड़े देशों से अनुरोध करने के स्थान पर छोटे देशों से अपील करने का प्रयत्न करना चाहिए। हम इन छोटे राष्ट्रों की सहायता करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु किसी न किसी बहाने इन्हीं का बड़े राष्ट्रों द्वारा शोषण होता है। इन छोटे राष्ट्रों का संघ बनाने का प्रयत्न हमारे लिए भयानक होगा क्योंकि बड़ी शक्तियों के पास महान् साधन हैं—जनशक्ति, धनशक्ति, सामग्री और विध्वंस-शक्ति आदि। कोरिया में क्या हो रहा है। वहां उत्तरी और दक्षिणी कोरिया में युद्ध नहीं हो रहा है, अपितु बड़े राष्ट्रों के हाथ में उनकी लगामें हैं। हमारे भरसक प्रयत्नों के बावजूद वहां शान्ति नहीं हो पाती तो हमारा इसमें क्या दोष है ?

चीन को संयुक्त राष्ट्रों में सम्मिलित करने का ही प्रश्न है। हम चीन को शामिल करने के पक्ष में थे। हम किसी बड़ी शक्ति का पक्ष या विरोध करके किसी से झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते। हम तो शांति स्थापित करने के लिए सच्चा प्रयत्न करना चाहते हैं। कोई भी पक्ष शांति स्थापित करना नहीं चाहता इसी कारण छोटी-छोटी मीन-मेख निकाली जाती हैं। पहले युद्ध बन्द करके शेष बातों पर बाद में विचार करने का प्रस्ताव उच्च उद्देश्यों से प्रेरित नहीं हो सकता।

लंका और दक्षिण अफ़्रीका में हमारे नागरिकों के साथ जो कुछ हो रहा है उसके विषय में हमारी नीति की आलोचना की गई है। डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कहा है कि हमारी नीति प्रभावकारी नहीं है, परन्तु उन्हें भी कहना पड़ा कि युद्ध तो कोई नहीं चाहता। युद्ध के अतिरिक्त जो कुछ किया जा सकता था वह तो किया ही जा रहा है।

भारत में विदेशी बस्तियों के प्रश्न पर भी आलोचक कहते हैं कि वे युद्ध नहीं चाहते। फिर अधीर होने से क्या लाभ है ? लंका भी तो हमारा अंग होना चाहिए था, परन्तु वह स्वतन्त्र है। उसकी स्थिति सामरिक महत्व की है अतः वहां स्थापित स्वार्थ हैं।

हमें धीरे धीरे चलना होगा । हमें ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए कि हम किसी संघर्ष में फंस जायें ।

पाकिस्तान भी स्वतन्त्र देश है और हम उससे युद्ध नहीं चाहते, अतः हम जो कुछ उपाय अपना रहे हैं वही सर्वोत्तम है । हम किसी भी गुट पर भरोसा नहीं कर सकते क्योंकि सब को अपने स्वार्थ का ध्यान है । यदि हम कोरिया, दक्षिण अफ़्रीका या पाकिस्तान के विषय में कोई गलत कदम उठा लेते तो हमारी भी दशा कोरिया जैसी हो जानी थी । हमारी वैदेशिक नीति की यह कसौटी होनी चाहिए कि हम दोनों गुटों के झगड़े में न पड़ कर अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर पाये हैं ।

हमारी नीति पर इस दृष्टि से विचार कीजिये कि हम राष्ट्रों में जनसाधारण में कितना सम्मान प्राप्त कर सके हैं । चाहे अमरीका और रूस के कुछ लोग हमें अच्छा न समझें परन्तु शांति के लिए भूखे संसार के लिए शांति की एकमात्र यही आशा है कि ४० करोड़ लोगों के राष्ट्र की यह नीति है कि युद्ध न हो । दोनों गुट शांति की बात करते हैं परन्तु वे अधिकाधिक अणुबम बना रहे हैं । हमें उनके शांति-प्रयासों से सावधान रहना चाहिए और यही हमारी वर्तमान नीति है । हमारी नीति को इसी दृष्टिकोण से परखना चाहिए कि हम अब तक विश्वशांति की किस हद तक रक्षा कर सके हैं और किसी संघर्ष में फंसने से बच सके हैं । इससे संसार के सामान्य-जनों को आशा-किरण दीख पड़ रही है ।

श्री रामचन्द्र रेड्डी (नेल्लोर).: हमारे समक्ष जो प्रतिवेदन पेश किया गया है वह असंतोषजनक है । इसमें विदेशी शक्तियों के साथ हमारे आर्थिक तथा अन्य सम्बन्धों की अधिक जानकारी होनी चाहिए थी । इस प्रकार की जानकारी की अनुपस्थिति में हमारी वैदेशिक नीति का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता ।

हमने समस्त भारत की स्वाधीनता के लिए स्वतंत्रता-संघर्ष किया था अतः देश में इन विदेशी बस्तियों का—विशेषतः फ्रेंच तथा पुर्तगाली बस्तियों का अस्तित्व हमें बहुत खटकता है । उन देशों के साथ जैसे वार्ता की गई है उससे हम संतुष्ट नहीं हैं । इन बस्तियों के चारों ओर के क्षेत्रों को तंग किया जा रहा है, हमारे राष्ट्रजनों को तंग किया जा रहा है और चिढ़ाया जा रहा है, हमारे राजस्व को हानि पहुंचाई जा रही है, गूंडागर्दी वहां पनप रही है, हमारी मद्य-निषेध नीति भी असफल हो रही है । मद्य, स्वर्ण आदि का चोरी से आना वहीं से होता है । पुर्तगाल तथा फ्रांस के साथ राजदूतावासों के द्वारा हमारे प्रधान मंत्री के व्यक्तिगत सम्पर्क से अधिक लाभ हो सकता है ।

लंका तथा दक्षिण अफ़्रीका हमारे हितों को हानि पहुंचा रहे हैं । हम राष्ट्रमंडल में हैं परन्तु इन समस्याओं के समाधान में राष्ट्रमंडल कुछ भी नहीं कर सकता । हमें अधिक दृढ़ता से काम लेना चाहिए । जब प्रधान मंत्री लंदन जायें तो उन्हें इन देशों से बातचीत करके शीघ्र ही कोई हल निकालना चाहिए । हमें या तो इन देशों में अपने राष्ट्रजनों की रक्षा करनी चाहिए या उन्हें स्पष्ट कह देना चाहिए कि वे अब हमारे राष्ट्रजन नहीं रहे अतः हम उनके लिए कुछ भी नहीं कर सकते ।

कहा जाता है कि हम अपने राष्ट्रजनों को विदेशों में नहीं जाने देंगे तो वे अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकेंगे अतः वे कमाने और जीवन-निर्वाह के लिए लंका और अफ़्रीका जाते हैं । हमें कृषि-कार्य का विकास करके उन्हें आजीविका प्रदान करनी चाहिए ।

[श्री रामचन्द्र रेड्डी]

हमारे यहां अभी भी १६ करोड़ एकड़ भूमि व्यर्थ पड़ी है जिस पर कृषि हो सकती है।

काश्मीर की समस्या ऐसी है कि वह राज्य भारत में है भी और नहीं भी, संविधान के अन्दर भी नहीं है और बाहर भी नहीं। प्रधान मंत्री को इस विषय में भी अपना वैयक्तिक प्रभाव काम में लेकर समस्या को सुलझाना चाहिए। यह एक अच्छी बात है कि जम्मू को प्रांतीय स्वायत्तता दी जानी वाली है।

गत वर्ष मैंने सुझाव दिया था कि अमरीका तथा इंगलिस्तान के समान यहां भी वैदेशिक तथा प्रतिरक्षा सम्बन्धी मामलों पर विरोधी दलों के नेताओं से परामर्श करते रहना चाहिए यदि स्थायी समितियां होतीं तो कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सकता था। इस पर विचार करना चाहिए।

इसके पश्चात् सदन मंगलवार, १७ मार्च, १९५३ के दो बजे तक के लिये स्थगित हुआ।